वैदिक धर्म में स्त्रियों की स्थिति

लेखक

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वैदिक धर्म में स्त्रियों की स्थिति

लेखक

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

पूर्व आचार्य, वेद विभागाध्यक्ष एवं कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालंधर

वैदिक धर्म में स्त्रियों की स्थिति

१

स्त्रियों की आज की शोचनीय अवस्था

संस्कृत के एक कवि ने एक बार स्त्रियों के सम्बन्ध में कहा था—

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां,
दोषाणां सन्निधानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।
दुर्ग्राह्यं यन्महद्भिर्नरवृषभैः सर्वमायाकरण्डम्,
स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्टम्।।

इस श्लोक में जो कुछ कहा गया है उसका भाव यह है कि "स्त्रियाँ सब संदेहों का घर, सब उद्दण्डताओं की राशि, सब प्रकार के टेढ़े-सीधे कामों की खान, सब बुराइयों का निवास, सब तरह के कपट और विश्वास न करने योग्य बातों का स्थान तथा सब तरह की चालबाजियों और धोखे के फलने-फूलने की भूमि होती हैं। इन का हृदय कहाँ तक नीच हो सकता है इस की थाह बड़े-बड़े भी नहीं पा सके हैं। न जाने यह स्त्रीरूप मशीन, जिस में कुछ अमृत और अधिक विष भरा हुआ है, किस ने पुरुषों के धर्म के नाश करने के लिये बना डाली है।"

आज से तिरानवे[1] साल पहले जब भगवान् दयानन्द ने भारत के रंगमंच पर अवतीर्ण हो कर परम-पावन वेद के पवित्र सन्देश का शंख फूंका, पुरुष जाति की स्त्रियों के सम्बन्ध में जो धारणा थी उसे कवि का उपर्युक्त श्लोक बहुत सुन्दरता के साथ बता देता है। उन में अमृत थोड़ा और विष बहुत अधिक है, उन की रचना पुरुषों का धर्म-नाश करने के लिए, उन्हें सन्मार्ग से हटा कर कुमार्ग पर ले जाने के लिए हुई है। यह थी भावना जो कि स्त्रियों के सम्बन्ध में उस समय पुरुषों के अन्दर पाई जाती थी। संसार के धर्मों के उस समय के इतिहास पर दृष्टि डाल जाइये। आप देखेंगे कि अनेक धर्म यहां तक भी सिखाते रहे हैं कि स्त्रियों के भीतर किसी आत्मा या रूह का निवास नहीं होता। इसी लिये उन में किसी तरह

---

१. ऋषि दयानन्द सम्वत् १६२० के प्रारम्भ में गुरु विरजानन्द से शिक्षा समाप्त कर के कार्यक्षेत्र में उतरे थे।

की सोचने-समझने, जानने-बूझने और अनुभव करने की शक्ति नहीं होती। उन के साथ किसी प्रकार का मान-अपमान और आदर–सत्कार का व्यवहार किया जाये, किसी तरह के सुख-दुःखमय जीवन में उन्हें रखा जाये, उन्हें इस का कोई अनुभव नहीं होता–वे इन बातों को महसूस नहीं कर सकतीं। एक शब्द में स्त्री पुरुष की सम्पत्ति है, जैसे दूसरी भौतिक जड़ चीज़ें उस की सम्पत्ति हैं, इस लिये कोई पुरुष अपनी स्त्री से चाहे किसी भी प्रकार का व्यवहार कर सकता है। इस में वह कोई अनौचित्य करता हो यह बात नहीं है। स्त्री का पुरुष की तरह कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व (personality) नहीं होती है। संसार में उस की सत्ता पुरुष के लिये है और उसी प्रकार से है जिस प्रकार से दूसरी सांसारिक चीजों की सत्ता पुरुष के लिये है। ईसाइयत जैसे प्रसिद्ध धर्मों में भी ये विचार रहे हैं।

यद्यपि हिन्दूधर्म में दर्शनिक तौर पर यह कभी नहीं माना गया कि स्त्रियों में कोई आत्मा या रूह नहीं होती हिन्दू धर्म ने दार्शनिक रूप में यह कभी स्वीकार नहीं किया कि स्त्रियों में किसी तरह की सोचने-समझने, जानने-बूझने और अनुभव करने की शक्ति नहीं होती, दर्शनिक तौर से हिन्दूधर्म ने उन में इन सब बातों का रहना स्वीकार किया है, पर पिछली अनेक शताब्दियों से अपने अमली जीवन में हिन्दू लोग भी स्त्रियों से इसी ढंग का बर्ताव करते रहे हैं कि मानो वे उन में किसी प्रकार की आत्मा या रूह की उपस्थिति स्वीकार न करते हों। मेरे घर में अनाज रहता है, कपड़े-लत्ते होते हैं और गाय-भैंसें बंधी होती हैं। क्यों ? इस लिये कि मेरे अन्दर एक विशेष प्रकार की इच्छाएँ पैदा होती हैं, उन इच्छाओं की पूर्ति मेरे घर में पड़ा अन्न कर देता है। एक दूसरे प्रकार की इच्छाएँ मेरे अन्दर उत्पन्न होती हैं, उन की पूर्ति मेरे वस्त्रों से हो जाती है। एक तीसरे प्रकार की इच्छायें मेरे मन में स्थान करती हैं, उन की पूर्ति मेरी गाय-भैंसों से उत्पन्न होने वाले दूध और घी-मक्खन कर देते हैं। इसी प्रकार मेरे अन्दर एक और प्रकार की इच्छायें पैदा होती हैं। उन की पूर्ति भी मुझे किसी प्रकार करनी चाहिये। इस के लिए मैं विवाह कर के अपने घर में एक स्त्री ला रखता हूं। यदि एक स्त्री से मेरी अनियन्त्रित इच्छायें पूरी नहीं होती हैं तो मैं आवश्यकतानुसार एक से अधिक स्त्रियां भी अपने पास रख सकता हूं। मेरे घर में स्त्री भी एक वैसी ही खाने-पीने की सी उपयोगी चीज होती है जैसी अनाज और घी-दूध जैसी दूसरी बीसियों चीजें। बस, इस से अधिक ऊंची कोई और स्थिति अपने व्यावहारिक जीवन में हम हिन्दू लोग भी स्त्रियों को प्रायः नहीं देते रहे हैं। हम ने यह बहुत कम स्वीकार किया है कि संसार के विद्या-विज्ञान को, सभ्यता और संस्कृति को, ऊंचा उठाने में स्त्री भी उसी प्रकार भारी भाग ले सकती है जिस प्रकार पुरुष लेता है–वह भी इस संसार को अधिक उन्नत

और अच्छा बनाने के लिये वैसा ही काम कर सकती है जैसा कि पुरुष करता है। हम ने पुरुषों के सम्बन्ध में तो यह स्वीकार किया कि प्रत्येक पुरुष में परमात्मा की ओर से पचासों प्रकार की शक्तियें और संभावनायें रख दी गई हैं। यदि उन्हें खिलने और खुलने का अवसर दिया जाये तो न जाने कौन पुरुष किस दिन क्या बन कर दिखा सकता है और संसार की उन्नति को और उन्नत करने में समर्थ हो सकता है। यदि अवसर मिले तो न जाने हम में से कौन एक उत्कृष्ट कवि हो सकता है, एक अच्छा न्यायाधीश और एक तीव्र-बुद्धि बैरिस्टर बन सकता है, एक निर्भय सैनिक और योग्य सेनापति तथा ऐड-मिरल (जल सेनापति) बन सकता है, आकाशचारी वायुयान-संचालक हो सकता है, एक देश का राष्ट्रपति चुना जा सकता है। तथा एक भारी व्यापारी या प्रखर विद्वान् एवं धुरन्धर व्याख्याता बन सकता है। और इस प्रकार अपनी विशेष योग्यता से संसार की सभ्यता, संस्कृति और विद्या-विज्ञान की वृद्धि करता हुआ उसे अधिक उन्नत बनाने में कारण बन सकता है। हम ने पुरुषों में इन सभी ईश्वरप्रदत्त शक्तियों की संभावना स्वीकार की है और इन संभावनाओं को वास्तविकता का रूप देने के लिये अपनी शक्ति के अनुसार सभी प्रकार की सहायता-सुविधा देने के उन के प्रति अपने कर्तव्य को हम बहुत कुछ पहचानते रहे हैं। पर स्त्री में हम ने इस प्रकार की संभावनायें (Possibilities) प्रायः कभी स्वीकार नहीं कीं। हम ने प्रायः कभी नहीं माना कि कोई स्त्री भी संसार के विद्या-विज्ञान, सभ्यता और संस्कृति को आगे बढ़ाने में किसी प्रकार का हाथ बटा सकती है। हमारे मस्तक में प्रायः यह कभी नहीं आया कि स्त्री भी वकील, न्यायाधीश, सिपाही, सेनापति, ऐडमिरल, राष्ट्रपति एवं व्याख्याता और उपदेष्टा आदि में से कुछ बन सकती है। हम ने यह नहीं माना और इसी लिये हम ने इस दिशा में स्त्रियों को भी किसी तरह की सहायता-सुविधा देने की जरूरत है इस बात को कभी नहीं पहचाना। हम स्त्रियों की पुरुष के सामने जो स्थिति समझते रहे हैं उस का निर्देश ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका है। उस स्थिति को अधिक स्थिर करने के लिये हमारे पण्डित-पुरोहित स्मृतियों और सूत्रग्रंथों में उस का सन्निवेश कर के उसे कानून का रूप देते रहे हैं। इस प्रकार की स्मृतियों और सूत्रग्रंथों में क्या कुछ पाया जाता है उस के उदाहरण यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है। हमारे लिये इतना याद रख लेना पर्याप्त है कि उस सारी शिक्षा का दो शब्दों में निचोड़ यह है कि स्त्री सिर्फ पुरुष के खाने-पीने की सी उस के उपभोग की सामग्री है। और उसे अपने खाने-पीने की सी वस्तु समझते हुए भी पुरुष को स्त्री से पूरी तरह सावधान रहना चाहिये क्योंकि वह दुनिया-भर के दोष और छल-कपटों का घर होती है। इस प्रकार के विचार रखने वाले लोग

स्त्री को क्या समझते रहे हैं इसे ऊपर उद्धृत श्लोक अति स्पष्टता से कह रहा है।

२
स्त्रियों की स्थिति और ऋषि दयानन्द

यह थी स्त्रियों की स्थिति जिस समय ऋषि दयानन्द का आविर्भाव हुआ। ऋषि से पुरुष द्वारा नारी पर होने वाला यह अत्याचार सहा न गया। उन्होंने मेघ-गम्भीर गर्जना से कहा—पुरुषो ! तुम्हें स्त्रियों पर होने वाले इस अत्याचार को बन्द करना चाहिये और उन्हें अपने साथ समता की स्थिति देनी चाहिये। लोगों ने कहा, भगवन् ! स्त्रियों की यह स्थिति तो वेदविहित है। ऋषि ने उत्तर दिया—यह झूठ है, वेद ऐसा कुछ नहीं कहते। वे तो स्त्री की बहुत ही गौरवमय स्थिति का वर्णन करते हैं। लोगों ने कहा—जाने दीजिये भगवन् ! वेद को हमारी स्मृतियाँ, हमारे सूत्रग्रंथ और पुराण स्त्रियों की स्थिति ऐसी ही बताते हैं जैसी कि आप देख रहे हैं। दयानन्द बोले—इन ग्रंथों की प्रामाणिकता वहीं तक है जहाँ तक ये ग्रंथ श्रुति भगवती के अनुकूल चलते हैं। जब ये ग्रंथ उस के विरुद्ध जायें तो इन की प्रामाणिकता नहीं रहती। तुम्हारे धर्म का विशुद्ध रूप वेद में वर्णित हुआ है। उसे पहचानो और अपना व्यावहारिक जीवन उसी के अनुसार बनाओ।

वैदिक धर्म में स्त्रियों की स्थिति

प्रिय सज्जनो ! हम आर्यसमाज के लोग उसी पवित्र वैदिक धर्म के मानने वाले हैं जिस का संसार में, विशेषकर भारतवर्ष में, बहुत पुराने समय में प्रचार था और जिसे आधुनिक समय में ऋषि दयानन्द ने फिर से लोगों के सामने अपने विशुद्ध रूप में उपस्थित किया। वैदिक धर्म में स्त्रियों की स्थिति क्या है इसे दिखाने के लिये निम्न पंक्तियें आपकी सेवा में रखी जा रही हैं।

तीन कसौटियाँ

यदि हमें किसी धर्म में स्त्रियों की क्या स्थिति है इसे स्पष्ट समझना हो तो तीन बातों का ध्यान रखना चाहिये। (१) एक तो यह कि किसी धर्म में भविष्य जीवन के लिये बच्चों की तैयारी के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उस में कन्याओं का क्या स्थान रखा गया है। दूसरे शब्दों में कहना हो तो किसी धर्म में बालकों की शिक्षा पर जितना बल दिया गया

है उतना ही बालिकाओं की शिक्षा पर भी बल दिया गया है कि नहीं, यह हमें सब से प्रथम देखना चाहिये। (२) दूसरी बात देखने की यह है कि जब स्त्री-पुरुष मिल कर, विवाहित हो कर, अपना जीवन व्यतीत करना आरम्भ करते हैं तब पुरुष के सामने स्त्री की क्या स्थिति किसी धर्म में रखी गई है। और (३) तीसरी बात जो देखनी चाहिये वह यह है कि किसी धर्म में कुटुम्ब से बाहर का जो स्त्री का जीवन है, उस की घर से बाहर समाज में जो स्थिति है, वह कैसी है। किसी भी धर्म में नारी का क्या स्थान है यह समझना हो तो हमारे लिये इन तीन बातों का देखना अत्यन्त आवश्यक है। मैं क्रमशः एक-एक बात को ले कर, वेद उस सम्बन्ध में स्त्री जीवन का क्या आदर्श रखता है यह आपकी सेवा में रखने का यत्न करूँगा।

३
वेद और स्त्री-शिक्षा

पहले बालिकाओं की भविष्य जीवन की तैयारी अर्थात् शिक्षा को लीजिये। वेद में भविष्य के लिये तैयारी के जीवन को, विद्यार्थी-जीवन को, ब्रह्मचर्यकाल कहा जाता है। एक विद्यार्थी के जीवन का आदर्श क्या होना चाहिये यह ब्रह्मचर्य शब्द की रचना को देखने से ही साफ हो जाता है। पर इस समय हमें इस शब्द के अर्थों की बारीकियों में जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं अधिक स्पष्टता से इस सम्बन्ध में वेद के अभिप्राय को आप के सामने रखना चाहता हूं। अथर्ववेद का ब्रह्मचर्य-सूक्त (अथर्व. ११.५.) विद्यार्थी का शिक्षा-काल किन परिस्थितियों में बीतना चाहिये, शिष्य को कैसे गुरुओं से शिक्षा मिलनी चाहिये, शिष्य और गुरु का पारस्परिक सम्बन्ध किस तरह का रहना चाहिये तथा विद्यार्थी को अपने शिक्षाकाल में क्या-क्या पढ़ना चाहिये, इन सब बातों को बहुत ही सुन्दर ढंग से बताता है। ब्रह्मचर्य-सूक्त में वर्णित इन सब बातों को यहाँ बता सकना संभव नहीं है। वहां पर विद्यार्थी को पढ़ाना क्या-क्या चाहिये इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है सिर्फ उसे ही थोड़े में कह कर मैं संतोष करूंगा। उस सूक्त के चौथे[1] मन्त्र में कहा गया है कि विद्यार्थी को चाहिये कि वह अपने अन्दर ज्ञान की आग को सदा प्रज्वलित रखे। उसे प्रज्वलित करने के लिये वह उस में पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीन लोकों को समिधा बना कर डालता रहे अर्थात् इन तीन लोकों में—विश्व

१. **इयं समित्पृथिवि द्यौर्दितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।**
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति।। अथर्व. ११. ५. ४।

भर में—पाये जाने वाले पदार्थों के सम्बन्ध में सब विद्या-विज्ञानों को वह सीखता रहे। इस विद्या-प्राप्ति के साथ-साथ उसे चाहिये कि वह तीन बातों का ध्यान और रखे। एक तो, यह कि वह हर समय आलस्य से रहित हो कर मुस्तैद, चौकन्ना, जागरूक, कटिबद्ध (मेखलाधारी) रहे। दूसरे, उसे प्रतिदिन शारीरिक व्यायाम (श्रम) करते रहना चाहिये। तीसरे, उसे अपना जीवन तपस्वी अर्थात् सादा और कष्टसहिष्णु बनाना चाहिए। उसी सूक्त में यह भी आदेश कर दिया गया है कि विद्यार्थी को भौतिक विद्या-विज्ञानों के साथ-साथ आत्मा-परमात्मा के ज्ञान या ब्रह्मविद्या को भी पूरी तरह सीखना चाहिये और इस प्रकार अपने को भविष्य जीवन के लिये सब तरह से तैयार और योग्य बना लेना चाहिये। उसी सूक्त में आगे चल कर कहा गया है कि कन्या को भी ब्रह्मचर्य का जीवन बिता कर ही विवाहित जीवन में प्रवेश करना चाहिये[1]। कन्या के ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने का अभिप्राय है कि वह ब्रह्मचारी के कर्तव्यकर्म को पूरा करे अर्थात् जो कुछ ब्रह्मचारी के लिए जानना और करना आवश्यक है उसे जाने और करे। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सूक्त में बालिकाओं की शिक्षा पर भी उतना ही बल दिया गया है जितना बालकों की शिक्षा पर दिया गया है।

अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड में तो इस विषय को सर्वथा ही स्पष्ट कर दिया गया है। उस काण्ड में स्त्री और पुरुष के विवाहित जीवन के कर्तव्यकर्मों का वर्णन किया गया है। वहाँ यह भी बताया गया है कि किस योग्यता के स्त्री और पुरुष को विवाहित जीवन में प्रवेश करना चाहिये। उसी काण्ड के प्रथम सूक्त का छठा मन्त्र **''चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम्''**[2] है। इस मन्त्र में कन्या के माता-पिता को सम्बोधन करके कहा गया है कि उन्हें चाहिये कि जब उन की कन्या विवाहित हो कर पति के घर में जाने लगे तो उसे दहेज दें। पर वह दहेज कैसा? 'चित्ति' अर्थात् दिमागी शक्ति (Intellectuality) उस में गदैले-तकिये आदि की जगह हो, 'चक्षु' अर्थात् चीजों की गहराई में जाकर ध्यान से देखने की शक्ति (Power of Observation) उस में अजंन अर्थात् सुरमा आदि शृंगार की चीजों के स्थान में हो, और द्युलोक तथा पृथिवी लोक के बीच में आने वाले सारे जगत् का ज्ञान उस में 'कोश' अर्थात् रुपये पैसे की जगह हो। यह मन्त्र तो यहां तक बढ़ता है कि माता-पिता को चाहिये कि वे अपनी कन्या को दहेज भी दें तो वह ज्ञान का दहेज हो। यही दहेज वस्तुतः आवश्यक दहेज है। दूसरे दुनियादारी के दहेज कोई दे सकें तो

१. **ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्व. ११.५.१८।**

२. **अथर्व. १४.१.६।**

दे दें, न दे सकें तो न दें। इस की कोई विशेष चिन्ता नहीं। पर ज्ञान का दहेज तो कन्या को मिलना ही चाहिये। ऋग्वेद[1] में भी ऐसा ही उपदेश है। यह मन्त्र सुन लेने के पीछे वेद में स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में क्या आदेश है इसे दिखाने के लिये किसी और प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती। पर इस सम्बन्ध में कुछ और प्रमाण भी दे देना अनुपयुक्त न होगा।

वेद के भिन्न-भिन्न स्थलों में स्त्री से इस प्रकार की बातें कही गईं और प्रार्थनाएं की गई हैं कि "हे पत्नि ! तू हमें ज्ञान का उपदेश कर[2]", "पति को धन कमाने के ढंग बता[3]", "तू सब प्रकार के कर्मों का ज्ञान रखती है[4]", "तू सब कुछ जानने वाली हमें धनधान्य की पुष्टि दे[5]", "तू हमें बुद्धियों से धन दे[6]" "तू हमारे घर की प्रत्येक दिशा में ब्रह्म अर्थात् वैदिक ज्ञान का प्रयोग कर[7]।" इन सब वचनों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेद की सम्मति में प्रत्येक स्त्री को विवाह से पहले जहाँ तक हो सके सब प्रकार के ज्ञान प्राप्त कर लेने चाहिये ताकि वह अपने गृहस्थ जीवन में उन से यथायोग्य उपयोग ले सके।

इस प्रकार हम ने देखा है कि वेद का धर्म बालकों की तरह ही बालिकाओं की शिक्षा पर भी पूरा बल देता है और कहता है कि उन्हें भी बालकों की तरह संसार का प्रत्येक विज्ञान और प्रत्येक विद्या सिखाई जानी चाहिये।

४
वेद और स्त्रियों का विवाहित जीवन

अब मैं वैदिक धर्म के अनुसार विवाहित जीवन में स्त्री की क्या स्थिति है इसे आप की सेवा में उपस्थित करूंगा।

---

१. 'चित्तिरा...पतिम्'। ऋग. १०.८५.७।
२. त्वं विदथमा वदासि। अथर्व. १४.१.२०।
३. पतिं देवि राधसे चोदयस्व। अथर्व. ७.४६.३।
४. कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसम्। अथर्व. ७.४७.१।
५. आद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु। अथर्व. ७.४७.२।
६. यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहिसहस्रसापोषं सुभगे रराणा।। अथर्व. ७.४८.२।
७. ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः। अथर्व. १४.१.६४।

विवाह की आयु

इस सम्बन्ध में हमें पहले यह देख लेना चाहिये कि विवाहित जीवन में प्रवेश करने के समय वर और वधू की आयु क्या होनी चाहिये। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हुए वर और वधू का एक वार्तालाप ऋग्वेद के १०वें मण्डल के १८३ सूक्त में दिया गया है। वहाँ दोनों ओर से एक दूसरे को युवा, युवति, पुत्रकाम और पुत्रकामा[1] इन शब्दों से सम्बोधन किया गया है। जिस से स्पष्ट प्रकट होता है कि वेद की सम्मति में उन्हीं स्त्री-पुरुषों को विवाहित जीवन में प्रवेश करना चाहिये जो युवा अर्थात् जवान हो चुके हों, और जिन में सन्तानोत्पत्ति की इच्छा उत्पन्न होने लग गई हो। इस प्रकार वेद बाल-विवाह की जड़ पर कुल्हाड़ा रख देता है। इसी प्रकार गृहस्थ में प्रवेश करते हुए वर-वधू के पारस्परिक वार्तालाप में या दूसरों द्वारा उन के सम्बोधन में वेद के भिन्न-भिन्न स्थलों में प्रयुक्त किये गये पतिकामा, जनिकामः[2] आदि विशेषण भी इसी बात का उपदेश देते हैं कि स्त्री और पुरुष का विवाह उस समय होना चाहिये जब कि उन के अन्दर एक दूसरे के लिए चाह पैदा होनी आरम्भ हो जाये। यह चाह यौवन में ही स्त्री पुरुष में उत्पन्न होती है। अतः दोनों का विवाह युवावस्था में होना ही स्वाभाविक है।

इस सम्बन्ध में एक बात और देखने योग्य है। अथर्ववेद का १४वां काण्ड तथा ऋग्वेद का १०.८५ सूक्त जो कि स्त्री और पुरुष के विवाहित जीवन के कर्त्तव्य-कर्मों और धर्मों का प्रतिपादन करते हैं कन्या को कन्या या इस के पर्यायवाची शब्दों से स्मरण नहीं करते। वहां उस के लिये 'सूर्या' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार वहां आरम्भ में ही वरों के लिये 'आदित्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। अब यदि हम, ऋषि दयानन्द ने पुराने शास्त्रों के आधार पर वैदिक विद्यार्थी जीवन के—ब्रह्मचर्य के—जो तीन भेद किये हैं उन के आधार पर, 'आदित्य' और 'सूर्या' शब्द का अभिप्राय समझना चाहें तो 'आदित्य' वह पुरुष कहलाता है जिसने ४८ वर्ष की आयु तक कभी स्वप्न में भी कोई गन्दा विचार अपने मन में उत्पन्न नहीं होने दिया और जो अपनी जीवनी शक्ति का एक कतरा भी अपने शरीर से बाहर न होने दे कर अपने दिमाग को विद्याओं से भरता रहा तथा योगाभ्यास से अपना आत्मा उच्च और पवित्र बनाता रहा हो। ऐसा पुरुष आदित्य इस लिये कहलाता है कि वह किसी से

---

१. ऋग्. १०. १८३. १, २।
२. अथर्व. २. ३०. ५।

दबता नहीं और संसार के अज्ञान और मिथ्या विश्वासों के अन्धकार को छिन्न-भिन्न करता रहता है जिस प्रकार यह भौतिक आदित्य—आकाश में चमकने वाला सूर्य—किसी से दबता नहीं और संसार के अन्धकार को छिन्न-भिन्न करता रहता है। इसी प्रकार जो बालिका २४-२५ साल की आयु तक कभी स्वप्न में भी अपने को अपवित्र न करती हुई अपने शरीर, दिमाग और आत्मा को उन्नत करती है उसे आदित्य ब्रह्मचारिणी कहा जाता है। सूर्य आदित्य का ही दूसरा पर्याय है। इस प्रकार वर को "आदित्य" और वधू को "सूर्या" अर्थात् आदित्या कहने का अभिप्राय यह है कि वेद की सम्मति में आदर्श विवाह वह है जो कि आदित्य ब्रह्मचारी बालक और आदित्य ब्रह्मचारिणी कन्या में सम्पन्न होता है। जो लोग इस ऊंचे आदर्श तक नहीं पहुंच सकते उन के लिए "वसु" और "रुद्र" ब्रह्मचर्य के निचले दो विकल्प हैं। कम से कम वसु ब्रह्मचर्य तो प्रत्येक बालक और बालिका को पूरा करना ही चाहिये। अर्थात् कम से कम २४-२५ वर्ष की ब्रह्मचारी पुरुष और १६-१७ वर्ष की ब्रह्मचारिणी कन्या से कम आयु के बालक और बालिकाओं का विवाह नहीं होना चाहिये। इस से कम आयु में विवाह करना पाप गिना गया है।

लोग कहेंगे, तुम्हारी आदित्य ब्रह्मचर्य की कल्पना एक निरी स्वप्न जगत् की कल्पना सी (Utopia) है—एक न हो सकने वाली बात है। क्या कभी इतनी ऊंची आयु तक भी बालक और बालिकायें अपने को इतना पवित्र, कि स्वप्न में भी बुरे विचार मन में पैदा न हों, रख सकते हैं ? हम इतना ही कहना चाहते हैं कि कमजोर निश्चय वाले लोगों को प्रत्येक नई बात प्रायः अशक्य लगा करती है। संसार की प्रायः सभी बड़ी-बड़ी लहरें (Movements) प्रारम्भ में अधिकांश लोगों को असंभव लगती रही हैं। पर दृढ़ निश्चय वाले लोग उन के अनुसार बहुत कुछ कर दिखाते रहे हैं। प्रारम्भ में कौन समझता था कि कभी सोशलिज्म (Socialism) और बौल्शेविज्म (Bolshevism) भी सफल हो सकेंगे। पर आज संसार का एक बड़ा भाग उन के आगे सिर झुका रहा है। वैदिक धर्म का आदित्य ब्रह्मचर्य का आदर्श भी पूरा हो सकता है यदि हम में इस के लिए प्रेम और निश्चय की दृढ़ता हो। लोग कहते हैं कि आर्यसमाज की आवश्यकता नहीं रही। मैं तो कहता हूं, जब तक वेद का यह आदित्य ब्रह्मचर्य का आदर्श पूरा नहीं हो जाता—जब तक हम अपने बालक और बालिकाओं के लिये ऐसी परिस्थितियें पैदा नहीं कर सकते जिन में उन्हें आदित्य ब्रह्मचर्य की अवधि तक स्वप्न में भी पवित्र रहते हुए अपने शरीर, मन और आत्मा को सब प्रकार से योग्य बनाने का अवसर मिल सके तब तक, यदि और बातों को छोड़ भी दें तो भी, आर्यसमाज की संसार को आवश्यकता है। आर्यसमाज को अपने इस भारी कर्त्तव्य को समझना चाहिये।

पति-पत्नी एक-दूसरे को स्वयं चुनते हैं

वेद में वर-वधू के विवाह की आयु की अवधि दिखाने के पश्चात् हम यह दिखाना चाहते हैं कि वैदिक धर्म में उन्हीं स्त्री-पुरुषों का विवाह-सम्बन्ध हो सकता है जिन्होंने एक-दूसरे को भली प्रकार जान लिया और देख लिया है। ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८३ वें सूक्त में विवाह करने की इच्छा वाली वधू अपने भावी पति को सम्बोधन कर के कहती है—''हे वर ! मैंने अपने मन से अच्छी प्रकार तुम्हें जान लिया है, तुम बहुत अच्छे ज्ञानी हो और गुरुकुल में तप का—सादगी और संयम का—जीवन व्यतीत करके आये हो और तुम्हें संतान की कामना है, आइये हम दोनों मिल कर सन्तानोत्पत्ति करें[१]।'' इसी प्रकार वर वधू से कहता है—''हे वधू ! मैंने तुम्हें अपने मन से जान लिया है, तुम उच्च गुणों वाली युवती हो और मुझे चाह रही हो, तुम्हें संतान की कामना भी है, आओ हम मिल कर सन्तानोत्पत्ति करें[२]।'' इसी प्रकार अथर्व. २.३०.१ में वर-वधू 'एक-दूसरे को चाहने वाला[३]' ऐसे शब्दों से याद करते हैं। अथर्व. २.३६.५ में वधू से कहा गया है कि—''हे वधू ! तुमें ऐश्वर्य की नौका पर चढ़ो और अपने पति को, जो कि तुम ने स्वय पसन्द किया है, संसार-सागर के परले पार पहुँचा दो[४]।'' अथर्व. १४.१.९ में कहा है कि—''वर वधू को चाहने वाला हो और वधू पति को पसन्द कर रही हो[५]।'' इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेद की सम्मति में वर-वधू का विवाह एक दूसरे को अच्छी प्रकार जान लेने के पीछे परस्पर की सहमति से होना चाहिये। परस्पर की सहमति के बिना वर-वधू का विवाह नहीं होना चाहिये।

---

१. अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम।। ऋग्. १०.१८३.१।

२. अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम्।
उप ममुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे।। ऋग् १०.१८३.२।

३. यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः। अथर्व. २.३०.१।

४. भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम्।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः।। अथर्व. २.३६.५।

५. सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादादात्।। अथर्व. १४.१.९।

चुनाव में माता-पिता का सहयोग

एक बात और है। यद्यपि विवाह में वर-वधू की पारस्परिक सहमति का रहना अत्यावश्यक है, पर युवक और युवती को अपना जीवन-भर का साथी चुनने में अपने माता-पिता आदि गुरुजनों की सलाह का भी पूरा ध्यान रखना चाहिये ताकि वे अनुभवहीनता के कारण अपना साथी चुनने में कोई गलती न कर बैठें। इसी भाव को बतलाने के लिए अथर्ववेद के १४.१.६ मन्त्र में कहा है—**'मनसा सवितादात्'** अर्थात् "कन्या को उत्पन्न करने वाला पिता अपने मन से—सारी बातें सोच-समझ कर—कन्या को पति के हाथ में देता है।" उसी मन्त्र में कहा है—**'अश्विनास्तामुभा वरा'** अर्थात् "वर और कन्या के माता-पिता कन्या और वर को पसन्द करने वाले बनते हैं।" इस प्रकार हम ने देखा कि माता-पिता आदि गुरुजनों की सलाह लेते हुए वर-वधू एक दूसरे को अच्छी प्रकार जान और देख-भाल कर परस्पर की अभिरुचि और सहमति से विवाह करें ऐसा वेद का आदेश है।

पति के घर में पत्नी की स्थिति

जब विवाह हो कर वधू पति के घर में आ जाती है तो वहां उस की स्थिति किसी भी प्रकार से हीन और अपमानजनक नहीं होती। प्रत्युत उसे पति के घर में बहुत ही सम्मानजनक स्थान मिलता है और पति के घर वाले उस के अपने यहां आ जाने से अपना भारी गौरव अनुभव करते हैं। इसे दिखाने के लिये हम वेद से यहां कुछ उद्धरण देते हैं—"हे वर ! यह वधू तुम्हारे कुल की रक्षा करने वाली है,[1]" "यह वधू पति के घर में जाकर रानी बने और वहां प्रकाशित होवे,[2]" "हे वधू ! तू ऐश्वर्य की नौका पर चढ़ कर पति को पार पहुंचा,[3]" "यह स्त्री हमारे खिले हुए घर में एक खिली हुई कली है,[4]" "ये स्त्रियें शुद्ध, पवित्र और यज्ञिय हैं, ये प्रजा, पशु और अन्न देती हैं,[5]" "हे मातृभूमि ! कन्याओं में जो तेज होता है वह हमें दो, [6]" "ये

---

१. एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि। अथर्व. १.१४.३।

२. सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु। अथर्व २.३६.३।

३. भगस्य नावमारोह पूर्णामनुपदस्वतीम्।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः।। अथर्व. २.३६.५।

४. कोशे काशः समुब्जितः। अथर्व. ६.३.२०।

५. शुद्धाः पूताः योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः।
अदुः प्रजां बहुलां पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम्।। अथर्व. ११.१.१७।

६. कन्यायां वर्चो यद्भूमे तेनास्माँ अपि संसृज। अथर्व. १२.१.२५।

स्त्रियें कभी दुःख से रोयें नहीं, इन्हें नीरोग रखा जाये और रत्नादि पहनने को दिये जायें, [१]'' ''हे वधू ! तू पति के घर में जाकर गृहपत्नी और सब को वश में रखने वाली बन,[२]'' ''हे वधू ! तू श्वसुर, सास, देवर और ननद की साम्राज्ञी या उन में चमकने वाली बन,[३]'' ''हे पत्नि ! अपने सौभागय के लिये मैं तेरा हाथ पकड़ता हूं,[४]'' ''हे पत्नि ! मैं सदा तेरा भरण-पोषण करूंगा,[५]'' ''मैंने अपनी पत्नी को देख-भाल कर पसन्द कर के लिया है, मैं अपने मित्रों-सहित उस के कहे में चलूंगा,[६]'' ''हे वधू ! तू हमारे घर चलने के लिये तैयार हो, वहाँ तुझे अमृत का लोक प्राप्त होगा,[७]'' ''हे वधू ! तू कल्याण करने वाली है और घरों को उद्देश्य तक पहुंचाने वाली है,[८]'' ''तुम पति-पत्नी दोनों यहाँ हंसते-खेलते हर्ष में रहो, सुन्दर घरों में सुन्दर सन्तानों वाले बनो,[९]'' ''हम इस पत्नी के सब अंगों में रोग न आने दे कर इसे सर्वथा नीरोग रखते हैं,[१०]'' ''हे पत्नि ! मैं ज्ञानवान् हूं तू भी ज्ञानवती है, मैं सामवेद हूं तो तू ऋग्वेद है,[११]'' ''यह वधू विराट् अर्थात् चमकने वाली है, इस ने सब को जीत लिया है[१२]''।

ये उद्धरण हम ने अथर्ववेद से दिये हैं। इन में जो भाव प्रकट किये गये हैं वैसे ही भाव ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ८५ वें सूक्त में भी प्रकट किये गये हैं। स्थानाभाव से उस सूक्त के उद्धरण हम यहाँ नहीं दे रहे। पति के घर में आने पर वधू की वहाँ कितनी सम्मान-जनक और गौरवमयी स्थिति वैदिक धर्म में कही गई है इस की कुछ झलक ऊपर के उद्धरणों से हमें मिलती है।

---

१. इमा नारीः...अनश्रवो अनमीवाः सुरत्नाः...। अथर्व. १२.२.३१।

२. गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी। अथर्व. १४.१.२०

३. सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ।। अथर्व. १४.१.४४।

४. गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्। अथर्व. १४.१.५०

५. ममेयमस्तु पोष्या। अथर्व. १४.१.५२।

६. जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम्। तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः। अथर्व. १४.१.५६।

७. आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकम्। अथर्व. १४.१.६१।

८. सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान्।। अथर्व. १४.२.२६।

९. ....हसामुदौ महसा मोदमानौ। सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ...। अथर्व १४.२.४३।

१०. अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि। अथर्व. १४.२.६९।

११. अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वम्। अथर्व. १४.२.७१।

१२. विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत्। अथर्व. १४.२.७४।

एक-पति और एक-पत्नी व्रत

वैदिक धर्म में एक पुरुष की एक ही पत्नी हो सकती है तथा एक स्त्री का एक ही पति हो सकता है। यह नियम जीवन भर के लिये लागू है। अर्थात् पति के मर जाने पर स्त्री को तथा स्त्री के मर जाने पर पति को दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं है।

तलाक नहीं हो सकता

साथ ही वैदिक धर्म में तलाक की भी जगह नहीं है। वर-वधू को विवाह से पूर्व भली-भाँति देख-भाल और पड़ताल कर के अपना साथी चुनने का आदेश दिया गया है– खूब अच्छी तरह परख कर अपना साथी चुनो। पर जब एक बार विवाह हो गया तो फिर विवांह टूट नहीं सकता–तलाक नहीं हो सकता। फिर तो एक दूसरे की कमी और दोषों को दूर करते हुए प्रेम और सहिष्णुता से गृहस्थ में रहो। एक पुरुष की एक ही पत्नी और एक स्त्री का एक ही पति होना चाहिये तथा विवाहित पति-पत्नी में कभी तलाक नहीं होना चाहिये इस विषय पर प्रकाश डालने वाले वेद के कुछ स्थल पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। अथर्व. ७.३७.१ में पति से पत्नी कहती है–"हे पति तुम मेरे ही रहो, अन्य नारियों का कभी चिन्तन भी मत करो[1]।" अथर्व. २.३०.१ में पति पत्नी से कहता है–"हे पत्नी ! तू मुझे ही चाहने वाली हो, तू मुझ से कभी अलग न हो[2]।" अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड और ऋग्वेद के दसवें मण्डल के ८५ वें सूक्त में विवाह के समय नव वर-वधू को उपदेश दिया है कि "तुम दोनों पति-पत्नी सारी आयु भर इस विवाहित जीवन के बन्धन में स्थिर रहो, तुम कभी एक दूसरे को मत छोड़ा[3]।" अथर्ववेद में वहीं चौदहवें काण्ड में कहा है– "ये नव विवाहित पति-पत्नी सारी आयु भर एक-दूसरे के साथ इस प्रकार इकट्ठे रहें जिस प्रकार चकवा और चकवी सदा इकट्ठे रहते हैं[4]।" ऋग् १०.८५.४७ में विवाह के समय वर-वधू अपने आप को पूर्ण रूप से एक-दूसरे में मिला देने का संकल्प करते हुए कहते हैं– "सब देवों ने हम दोनों के हृदयों को मिला कर इस प्रकार एक कर दिया है जिस प्रकार दो

---

१. **यथासो मम केवल न्यासां कीर्तयाश्चन। अथर्व. ७.३७.१।**

२. **मां कामिन्यसो मन्नापगा असः। अथर्व. २.३०.१।**

३. **इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। अथर्व. १४.१.२२। ऋग्. १०.८५.४२।**

४. **चक्रवाकेव दम्पती...विश्वमायुर्व्यश्नुताम्। अथर्व. १४.२.६४।**

पात्रों के जल परस्पर मिला दिये जाने पर एक हो जाते हैं[1]।'' अथर्व. १४.१.५२. में वर अपनी वधू को सम्बोधन कर के कहता है—''हे पत्नि ! तू मुझ पति के साथ बुढ़ापे तक चलने वाली हो[2]।'' ''हे पत्नि ! तू मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक जीवित रह[3]।'' वेद के इन और ऐसे ही अन्य स्थलों में स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है कि आदर्श स्थिति यह है कि एक स्त्री का एक पति और एक पुरुष की एक ही पत्नी रहनी चाहिये तथा उन में कभी तलाक नहीं होना चाहिये।

विवाह वास्तव में वह दिव्य सम्बन्ध है जिस में दो व्यक्ति अपना हृदय एक-दूसरे को प्रदान कर देते हैं। हृदय एक ही बार और एक ही व्यक्ति को दिया जा सकता है। एक बार दिया हुआ हृदय फिर वापिस नहीं लिया जा सकता। इसी लिये वेद एक-पति और एक-पत्नी के व्रत का विधान करते हैं तथा तलाक का निषेध करते हैं। वेद की सम्मति में एक बार पति-पत्नी रूप में जिस का हाथ पकड़ लिया, जीवन भर उसी का होकर रहना चाहिये। यदि एक-दूसरे में कोई दोष और त्रुटियें दीखने लगें तो उन से खिन्न हो कर एक-दूसरे को छोड़ नहीं देना चाहिये। प्रत्युत स्नेह और सहानुभूति के साथ सहनशीलता की वृत्ति का परिचय देते हुए परस्पर के दोषों को सुधारने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। जो दोष दूर ही न हो सकते हों उन के प्रति यह सोच कर कि दोष किस में नहीं होते, उपेक्षा की वृत्ति धारण कर लेनी चाहिये। स्नेह और सहानुभूति से एक-दूसरे की कमियों को देखने पर वे कमियें परस्पर के परित्याग का हेतु कभी नहीं बनेंगी। इसी अभिप्राय से वैदिक विवाह-संस्कार में वर-वधू मिल कर मन्त्र-ब्राह्मण के वाक्यों से कुछ आहुतियें देते हैं जिन का भावार्थ इस प्रकार है—''तुम्हारी मांग में, तुम्हारी पलकों में, तुम्हारे रोमों के आवर्तों में, तुम्हारे केशों में देखने में, रोने में, तुम्हारे शीलस्वभाव में, बोलने में, हंसने में, रूप-काँति में, दाँतों में, हाथों और पैरों में, तुम्हारी जंघाओं में, पिंडलियों में, जोड़ों में, तुम्हारे सभी अंगों में कहीं भी जो कोई दोष, त्रुटि या बुराई है, मैं इस पूर्णाहुति के साथ उन सब तुम्हारी त्रुटियों और दोषों को शान्त करता हूँ[4]।'' विवाह संस्कार की समाप्ति पर ये वाक्य पढ़ कर आहुतियें दी

---

१. समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। ऋग्. १०. ८५. ४७।

२. मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। अथर्व. १४. १. ५०।

३. मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्। अथर्व. १४. १. ५२।

४. लेखासंधिषु पक्ष्मस्वावर्तेषु च यानि ते।

जाती हैं। इन आहुतियों द्वारा वर-वधू यह संकल्प करते हैं कि हम ने एक-दूसरे को उस के सारे गुण-दोषों के साथ ग्रहण किया है। हम एक-दूसरे के दोषों से खिन्न हो कर परस्पर झगड़ेंगे नहीं, और न ही कभी एक-दूसरे का परित्याग करने की सोचेंगे। हम तो विवाह-संस्कार की इन पूर्णाहुतियों के साथ यह संकल्प दृढ़ करते हैं कि हम सदा परस्पर के दोषों को स्नेह और सहानुभूति से सुधारने और सहने का प्रयत्न करते रहेंगे। विवाह से पहले हम ने अपने साथी को इस लिये चुना था कि वह हमें अपने लिये सब से अधिक उपयुक्त और गुणी प्रतीत हुआ था। अब विवाह के पश्चात् हमारी मनोवृत्ति यह हो गई है कि क्योंकि मेरी पत्नी मेरी है और मेरा पति मेरा है, इस लिये मेरे लिये मेरी पत्नी सब से अधिक गुणवती है और मेरा पति मेरे लिये सब से अधिक गुणवान् है। अब हमारे हृदय मिल कर एक हो गये हैं। अब हमें एक-दूसरे के गुण ही दीखते हैं, अवगुण दीखते ही नहीं। और यदि कभी किसी को किसी में कोई दोष दीख भी जाता है तो उसे स्नेह और सहानुभूति से सह लिया जाता है तथा सुधारने का यत्न किया जाता है। विवाह की इन पूर्णाहुतियों में हम ने ऐसा संकल्प दृढ़ कर लिया है और अपनी मनोवृत्ति ऐसी बना ली है। जब हमारे दिल और आत्मा एक हो गये हैं तो हमारा ध्यान आपस की ऊपरी शारीरिक त्रुटियों की ओर जा ही कैसे सकता है ?

इस प्रकार वैदिक धर्म में न तो अनेक-पत्नी प्रथा (Polygamy) का स्थान है और न ही अनेक-पति प्रथा (Poliandry) का। इस के साथ वैदिक धर्म में तलाक का भी विधान

तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।।
केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत्।
तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।।
शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्।
तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।।
आरोकेषु दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्।
तानिते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।।
ऊर्वोरुपस्थे जंघ्योः सन्धानेषु च यानि ते।
तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा।।
यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन्।
पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा।।

मन्त्र ब्राह्मण. १.३.१-६।
गोभि. गृह्य. २.३.५।

नहीं है। यह ऊपर दिये गये वेद के प्रमाणों से अत्यन्त स्पष्ट है।

पुनर्विवाह

वेद में चार वर्णों और चार आश्रमों की जो ऊंची, पवित्र और आध्यात्मिकता से भरी हुई मर्यादा वर्णित की गई है, वेद में ब्रह्मचर्य के जीवन पर, संयम और इन्द्रिय-जय-प्रधान जीवन, पर जो बेहद बल दिया गया है, तथा विवाहित जीवन के ऊंचे आदर्शों के सम्बन्ध में जो कुछ वेद में स्थान-स्थान पर कहा गया है, उस सब पर बारीकी से विचार करते हुए प्राचीन आचार्यों और ऋषियों ने तथा इस युग के महान् ऋषि दयानन्द ने वेद की शिक्षाओं का यह भी निष्कर्ष निकाला है कि द्विजों में—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में—विवाह केवल एक बार ही होना चाहिये। पति-पत्नी की मृत्यु हो जाने पर भी द्विजों को दूसरी बार विवाह नहीं करना चाहिये। पति-पत्नी की मृत्यु हो जाने पर केवल शूद्रों में पुनर्विवाह हो सकता है। यदि पुरुष अक्षत-वीर्य हो और स्त्री अक्षत-योनि हो तो पति-पत्नी की मृत्यु हो जाने पर द्विजों में भी पुनर्विवाह हो सकता है। नहीं तो द्विजों में पुनर्विवाह का विधान नहीं है। द्विजों में पति-पत्नी में से किसी के मर जाने आदि आपत्कालों में सन्तान की इच्छा होने पर नियोग किया जा सकता है[1]। द्विजों में पुनर्विवाह का निषेध इस अभिप्राय से किया गया है कि उन की शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार से हुई है कि उन के लिये संयम का जीवन बिता सकना आसान होता है। आपत्-काल में उन की सन्तान की आवश्यकता की पूर्ति नियोग द्वारा हो ही जाती है। शूद्र, शूद्र इस लिये कहलाता है कि उसे अवसर दिये जाने पर भी वह शिक्षा-दीक्षा में उन्नति नहीं कर पाता है। उस की शिक्षा-दीक्षा ऊंची न होने के कारण शूद्र से संयम की उतनी आशा नहीं की जा सकती। इस लिये पति-पत्नी में से किसी की मृत्यु हो जाने पर शूद्रों में पुनर्विवाह का विधान कर दिया गया है। परन्तु द्विज पुनर्विवाह न कर के जीवन भर संयम से रहें यह अवस्था तभी आ सकती है जब कि समाज की रचना

---

१. को वां शयुत्रा विधवेय देवरम्। ऋग्. १०.४०.२.।। उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गता-सुमेतमुप शेष एहि। हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ। ऋग्. १०.१८.८.।। अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्। ऋग्. ०.१०.१०. ।। इत्यादि वेदमन्त्रों में आचार्यों ने द्विजों के लिये नियोग का विधान बतलाया है। तथा—इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्। धर्मं पुराणमनु पालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं च धेहि।। अथर्व. १८.३.१।। इत्यादि मन्त्रों में आचार्यों ने द्विजेतरों के लिये पुनर्विवाह का विधान बतलाया है।

वर्णाश्रम-धर्म के आधार पर हो और समाज के रहन-सहन और शिक्षा-दीक्षा में संयम पर भारी बल दिया जाता हो। समाज-रचना ऐसी न होने की अवस्था में लोगों से संयम की उतनी आशा नहीं की जा सकती। आजकल की समाज-रचना उस प्रकार की नहीं है। आजकल के रहन-सहन और शिक्षा-दीक्षा में संयम पर वह बल नहीं दिया जाता। इस लिये आजकल के लोगों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे पति-पत्नी के मर जाने पर संयम से रहेंगे और पुनर्विवाह की आवश्यकता अनुभव नहीं करेंगे। संयम की दृष्टि से आजकल के लोग प्रायः सभी शूद्र ही हैं। इस लिये आजकल के संयमहीन युग में नियोग भी नहीं चल सकता और पुनर्विवाह की व्यवस्था के बिना भी काम नहीं चल सकता। इसी लिये वर्तमान युग में वैदिकधर्मियों ने पुनर्विवाह की—विधवा विवाह और विधुर विवाह की—पद्धति को स्वीकार कर लिया है। पुनर्विवाह अधर्म और पाप नहीं है, वह शूद्रों का धर्म है—कम संयम वाले लोगों का धर्म है।

पति की सम्पत्ति में पत्नी का अधिकार

विवाह के पीछे स्त्री और पुरुष के हृदय मिल कर एक हो जाते हैं। वह जो कुछ खाते, पीते और भोगते हैं मिल कर खाते, पीते और भोगते हैं। इस अभिप्राय से अथर्व. १२.३.३६ में कहा गया है कि "हे पति और पत्नी ! जो तुम एक-दूसरे से छिपा कर खाते हो उसे मिला दो, मिल कर उस का उपभोग करो, तुम दोनों मिल कर अपने इस लोक को बनाओ[१]।" विवाह के उपरान्त पुरुष की सारी संम्पत्ति पर पत्नी का पूरा अधिकार हो जाता है। विवाह के समय पति, पत्नी को सम्बोधन कर के प्रतिज्ञा करता है—"हे पत्नी ! मैं तुझ से स्तेय कर के कुछ नहीं खाऊंगा[२]।" स्तेय का अर्थ होता है, किसी के अधिकारों को मार कर अपना स्वार्थ पूरा करना। पति कहता है, हे पत्नी ! मैं तेरे अधिकारों की परवाह न कर के संपत्ति का भोग नहीं करूंगा। प्रत्युत मुझे संपत्ति का भोग करते हुए तेरे अधिकारों का पूरा ध्यान होगा। मैं अपनी संपत्ति का इस प्रकार खर्च करूंगा कि मेरे जीते तुझे किसी प्रकार का कष्ट न हो। और मरते समय मैं उस का ऐसा प्रबन्ध करता जाऊंगा कि मेरे पीछे भी

---

१. यद्यज्जाया पचति त्वत्परः परः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु सम्पादयन्तौ सह लोकमेकम्।। अथर्व. १२.३.३६।

२. न स्तेयमद्मि। अथर्व. १४.१.५७।

कोई तेरे अधिकारों को छीन न सके। अर्थात् मेरे घर में आने के बाद तेरे अधिकारों की पूरी रक्षा होगी–उन्हें कोई मार न सकेगा। इस से यह स्पष्ट निर्देश मिलता है कि पति को चाहिये कि वह अपनी पत्नी के लिये अपनी संपत्ति का कोई विशेष भाग निश्चित कर देवे जिस से पति के जीवनकाल में या उस के मर जाने के बाद कुटुम्ब के किसी व्यक्ति के हाथों उस की पत्नी को अपने अधिकारों से वंचित न होना पड़े तथा किसी प्रकार के क्लेश उसे न सहने पड़ें।

पति विवाह के समय इसी भाव को एक दूसरे प्रतिज्ञामन्त्र में और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में पत्नी के आगे रखता है। वह पत्नी से प्रतिज्ञा करता है कि–"हे पत्नी ! आज से मैं जीवन-भर तेरा पालन-पोषण करूंगा, तू आज से मेरी पोष्य हो गई है[1]।" इस प्रतिज्ञा द्वारा पत्नी का जीवन-भर पालन-पोषण करने का भार पति अपने ऊपर लेता है। वह अपने जीते-जी और मरने के बाद भी अपनी सम्पत्ति का प्रबनध इस प्रकार कर देगा कि पत्नी को किसी प्रकार कष्ट न हो, किसी अवस्था में भी उस के अधिकारों को हड़पा न जा सके। इस प्रकार प्रति अपनी सम्पत्ति में पत्नी के अधिकार को पूर्ण रूप से स्वीकार करता है। पति के मरने के बाद भी उस की सम्पत्ति में पत्नी का अधिकार बराबर बना रहता है यह बात भी वेद में स्पष्ट शब्दों में कही गई है। ऋग्वेद में एक जगह उपमा दी गई है कि "जिस प्रकार पति-विहीन विधवा पति के धन को प्राप्त करती है[2]।" वेद के इस वाक्य में पति की सम्पत्ति में विधवा के अधिकार का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। वैदिक धर्म में पति की संपत्ति में पत्नी का अधिकार को सदा ही स्वीकार किया जाता रहा है। श्री द्वारकानाथ मिश्र एम. ए., डी. एल्. (M.A.D.L.) ने अपनी पुस्तक 'दी पोजिशन ऑफ् बिमेन इन हिन्दू लॉ' (The Position of Women in Hindu Law–हिन्दू-धर्मशास्त्रों में स्त्रियों का स्थान) में मीमांसा के आधार पर दिखाया है कि पत्नी पति की सम्पत्ति में समान अधिकारिणी है–पत्नी की सहमति के बिना पति दान भी नहीं कर सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक धर्म में स्त्री की इतनी परवाह की जाती है कि पति उस के हृदय के साथ अपना हृदय मिला कर एक कर लेने की प्रतिज्ञा कर चुकने पर भी उस के अधिकारों की रक्षा के लिये उद्यत रहता है और अपनी सम्पत्ति में से एक विशेष भाग उस के लिये निश्चित कर देता है। यह सम्पत्ति का भाग किस प्रकार और कितना निश्चित होगा यह विस्तार से वेद में नहीं बताया गया है। क्यों कि यह

---

१. ममेयमस्तु पोष्या। अथर्व. १४.१.५२।

२. परिवृक्तेव पतिविद्यमानट्। ऋग्. १०.१०२.११।

चीज़, देश, काल और अवस्थाओं के अनुसार बदलने वाली है। पति की सम्पत्ति में पत्नी के भाग का निश्चय करते हुए सन्तानों के भाग को भी ध्यान में रखना होगा। इस लिये पति की सम्पत्ति में पत्नी के भाग के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा न करते हुए वेद ने इतना ध्रुव तौर पर कह दिया है कि पत्नी पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी है, पत्नी पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी है, पत्नी का भली-भाँति पालन-पोषण करना और उस के अधिकारों की रक्षा करना पति का आवश्यक धर्म है।

इस प्रकार हम ने देखा कि वैदिक धर्म में स्त्री की विवाहित जीवन की स्थिति पुरुष से किसी प्रकार हीन और अपमानजनक नहीं है। प्रत्युत वह बड़ी प्रशस्त और गौरवमय है।

पिता की सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार

इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व पिता की सम्पत्ति में पुत्री के अधिकार के सम्बन्ध में वेद की क्या सम्मति है इस सम्बन्ध में भी दो शब्द कह देना अप्रासंगिक न होगा। वेद के प्रसिद्ध व्याख्याकार आचार्य यास्क ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ निरुक्त के तृतीय अध्याय के ३-५ खण्डों में इस विषय पर बड़ा सुन्दर विचार किया है और वहाँ इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले अनेक वेद-मन्त्रों को उद्धृत किया गया है। वहाँ ऋग्. ३.३१.१ मन्त्र को उद्धृत कर के उस के अर्थ पर विचार करते हुए यास्क ने लिखा है कि अनेक आचार्य इस मन्त्र से यह परिणाम निकालते हैं कि पुत्रों की भाँति ही पुत्री का भी अपने पिता की सम्पत्ति में भाग होना चाहिये, पुत्र और पुत्री समान रूप से पिता के दामाद अर्थात् सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं। वहाँ उन्होंने मनु का मत दिखाते हुए एक श्लोक[२] भी उद्धृत किया है जिस में कहा गया है कि मनु की सम्मति में पुत्र और पुत्री अपने पिता की सम्पत्ति के समान रूप से उत्तराधिकारी हैं। वहाँ यास्काचार्य ने अथर्व. १.१७.१ और ऋग्. १.१२४.७ मन्त्रों[३] को उद्धृत कर

---

१. शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे।। ऋग्. ३.३१.१।

२. अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।।

३. अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः।। अथर्व. १.१७.१।
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः।। ऋग् १.१२४.७।

के अपना मत यह दिखाया है कि जिन कन्याओं का कोई भाई न हो वे अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती हैं। ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के १७वें सूक्त में एक मन्त्र१ आता है जिस मन्त्र[1] में उपमा-वाक्य द्वारा यह कहा गया है कि पिता के घर में रहने वाली कन्या भाइयों के समान ही पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है। इस प्रकार इस अंश में तो वेद का अभिप्राय अत्यन्त स्पष्ट है ही कि जिस कन्या का भाई न हो अथवा जो कन्या पिता के ही घर में रहे उस का अपने पिता की सम्पत्ति में अधिकार रहना चाहिये। और कई आचार्यों के अनुसार, जैसा कि यास्क ने लिखा है, ऋग्. ३.३१.१ में यह उपदेश भी दिया गया है कि सभी कन्याओं का पिता की सम्पत्ति में भाइयों के समान ही अधिकार है। जैसा कि यास्क ने लिखा है कई आचार्य इस मन्त्र को कन्या के उत्तराधिकार में न लगा कर पुत्र के उत्तराधिकार में लगाते हैं। यदि इस मन्त्र के अर्थ में मतभेद हो और यह न भी माना जाये कि पिता की सम्पत्ति में विवाहित कन्या का भी अधिकार होता है तो भी कोई हानि नहीं है और न ही उस अवस्था में कन्याओं के साथ कोई अन्याय ही होता है, क्योंकि जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है विवाहित कन्याओं का अपने पतियों की सम्पत्ति में तो अधिकार रहेगा ही।

५
वेद और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

अब हम देखना चाहते हैं कि वैदिक धर्म में स्त्री की कुटुम्ब से बाहर की सामाजिक स्थिति किस प्रकार की रखी गई है।

परदा नहीं है

यहाँ प्रारम्भ में ही यह स्मरण रख लेना चाहिये कि वैदिक धर्म में परदे की जगह नहीं है। विवाह के बाद जब वधू पहले-पहल पति-घर में आती है तो पति-ग्राम के लोगों से पति के घर वाले कहते हैं—"यह कल्याण-मंगल-बढ़ाने वाली वधू हमारे घर में आई है, आओ इसे देखो[2]।" परदे का न होना स्त्री के सामाजिक जीवन की एक भारी रुकावट को हटा देता है। इस के न रहने से उस का समाज में स्वच्छन्दता से मिलना और विचारना (Free movement and

---

१. अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो येन मामहः।। ऋग्. २.१७.७।

२. सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। अथर्व. १४.२.२८।

free mixing in society) बहुत कुछ आसान हो जाता है।

स्त्रियाँ राजा और अन्य राज्याधिकारी भी बन सकती हैं

किन्तु वेद यहीं तक नहीं ठहरा है। अगर हम ऋषि दयानन्द-कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्यों को उठा कर देखें तो हमें वहां स्त्री की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में जो कुछ मिलता है वह अद्भुत है। वहाँ हम देखते हैं कि एक स्त्री चाहे तो सेना या पुलिस का सिपाही बन सकती है, प्राड्विवाक अर्थात् वकील बन सकती है, उपदेशक, अध्यापक और व्याख्याता बन सकती है, यहाँ तक कि वह एक देश का राष्ट्रपति या राजा भी चुनी जा सकती है। वेदों का स्वाध्याय जिन्होंने गम्भीरता से किया है उन्हें पता है कि वेद के राजनैतिक प्रकरणों में राष्ट्र का प्रबन्ध ठीक ढंग से चलाने के लिये प्रत्येक राज्य में 'सभा' और 'समिति' नाम की दो नियामक सभाओं (Legislative Chambers) के स्थापित करने की आज्ञा है। इन में समिति नामक सभा ऊंची और अधिक शक्तिशाली होती है। अथर्व. ७.३८.४ और १२.३.५२ में क्रमशः सभा और समिति में जाकर स्त्रियों के भाग लेने और बोलने का वर्णन आया है[1]। जब कोई स्त्री सभा और समिति में जाने के लिये चुनी जा सकती है तो वह राष्ट्र के किसी भी ऊंचे से ऊंचे पद को सुशोभित करने के लिये भी चुनी जा सकती है, यह स्पष्ट ही है।

यजुर्वेद के बीसवें अध्याय के प्रथम दस मन्त्रों में राजा के राज्यारोहण का वर्णन है। इन मन्त्रों में राज्यासीन हो रहा राजा अपने एक आलंकारिक शरीर का वर्णन कर रहा है। वह कह रहा है कि मैं राज्यासीन होकर अपने राष्ट्र में अमुक-अमुक कल्याण-मंगल के कार्य करूंगा। वह अपने द्वारा राज्य में किये जाने वाले इन मंगल-कार्यों के साथ अपने आप को तन्मय कर लेने की भावना व्यक्त करता है। इस तन्मयता की भावना को प्रकट करने के लिये वह राज्य में अपने द्वारा किये जाने वाले एक-एक कार्य को गिना-गिना कर उसे अपने शरीर का एक-एक अंग बताता जाता है। वह रूपक से प्रजा के कल्याण के लिये किये जाने वाले कार्यों को ही अपना शरीर बना लेता है। इस रूपक का अभिप्राय यह है कि राजा यह बताना चाहता है कि राज्यासीन हो जाने के पश्चात् मुझे अपने शरीर के सुख-आराम की चिन्ता नहीं होगी, मुझे तो प्रजा के भाँति-भाँति के कल्याण करने की ही चिन्ता होगी, अब से प्रजा का कल्याण ही मेरा स्वरूप हो जायेगा ! राजा प्रजा-कल्याण-रूप शरीर के अपने इस रूपक में

---

१. **अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद। अथर्व. ७.३८.४।**
यदक्षेषु वदा यत्समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकामयां। अथर्व. १२.३.५२।

पुरुष-शरीर के सब अंगों को तो गिनाता ही है, वह स्त्री के विशेष अंग[1] को भी गिनाता है। राजा के शरीर के इस रूपक में पुरुष के विशेष अंग के साथ स्त्री के विशेष अंग को गिनाने का स्पष्ट रूप में यह संकेत है कि जिस प्रकार कोई पुरुष राजा चुना जा सकता है उसी प्रकार कोई स्त्री भी राजा चुनी जा सकती है, और जैसे राजा चुने गये किसी पुरुष को प्रजा के कल्याण में तन्मय हो जाना चाहिये उसी प्रकार राजा चुनी गई स्त्री को भी प्रजा के कल्याण में तन्मय हो जाना चाहिये। यजुर्वेद के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि पुरुषों की भाँति स्त्रियें भी राजा या राष्ट्रपति चुनी जा सकती हैं। पाठकों को यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि वेद में निर्वाचित-राज-पद्धति को ही स्वीकार किया गया है आनुवंशिक एकतन्त्र राजपद्धति को नहीं।

वैदिक नारी की सामाजिक आकांक्षा

यहाँ ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १५९ वें सूक्त का सारांश दिया जाता है। वैदिक धर्म में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को समझने में उस से अच्छी सहायता मिलेगी। एक गृहपत्नी प्रातःकाल उठते ही अपने उद्गार कहती है–"यह सूर्य उदय हुआ है, इस के साथ ही मेरा सौभाग्य भी ऊंचा चढ़ निकला है। मैं अपने घर और समाज की ध्वजा हूँ, उस की मस्तक हूँ। मैं भारी व्याख्यात्री हूँ। मेरे पुत्र शत्रु-विजयी हैं। मेरी पुत्री संसार में चमकती है। मैं स्वयं दुश्मनों को जीतने वाली हूँ। मेरे पति का असीम यश है। मैंने वह त्याग किया है जिस से इन्द्र (सम्राट्) विजय पाता है। मुझे भी विजय मिली है। मैंने अपने शत्रु निःशेष कर दिये हैं[2]।"

---

१. मेऽपचितिर्भसत्। यजुः. २०.९.।

२. उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः।।
अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्।।
मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।
येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम्।।
असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव।।

वेद के इस सूक्त की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है, वह स्वयं अत्यन्त स्पष्ट है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक धर्म में स्त्री की सामाजिक स्थिति पर किसी भी प्रकार की रुकावट नहीं है। वह जो कुछ भी चाहे बन और कर सकती है। उसे अपनी शक्ति को विकसित कर के संसार में कुछ भी बनने और करने का अधिकार है जो कि पुरुष बन और कर सकता है। उस के सब क्षेत्रों में अधिकार पुरुष के समान हैं। जो कुछ पुरुष प्राप्त कर सकता है वह स्त्री भी प्राप्त कर सकती है। जहाँ पुरुष पहुँच सकता है वहाँ स्त्री भी पहुँच सकती है। दोनों के अधिकार समान हैं।

जहाँ तक स्त्री के अधिकारों का प्रश्न है वहाँ तक उन्हें कोई नहीं हड़प सकता है। एक स्त्री अपनी इच्छा और शक्ति के अनुसार जो कुछ बनना चाहे बन सकती है। उसे रोका नहीं जा सकता। प्रत्युत समाज को उस की सहायता करनी होगी।

स्त्रियों का एक महान् कर्तव्य

परन्तु यदि हम स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी वेद के सारे प्रकरणों को मिला कर पढ़ें और उन की भिन्न-भिन्न शिक्षाओं का समन्वय करें तो हमें उन से एक विशेष निर्देश निकलता प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वेद स्त्रियों की सेवा में एक डेपुटेशन ले जाते हों और उन से कहते हों कि देवियो ! अधिकार और हक की दृष्टि से तुम सर्वथा पुरुषों के समान हो, तुम्हारे हक छीने या रोके नहीं जा सकते। तुम जो चाहो बन सकती और कर सकती हो। इस में तुम्हारी सहायता की जायेगी। परन्तु हम तुम्हें आफिस की कुर्सियों, न्यायाधीशों के मंचों और राष्ट्रपतियों के सिंहासनों की ओर जाने से जान-बूझ कर मना करना चाहते हैं। हम इन सब कामों से ऊंचा एक काम तुम्हारे सुपुर्द करना चाहते हैं उसे तुम्हीं कर सकती हो। पुरुष उसे नहीं कर सकते। वह काम है मनुष्य-समाज को सच्चे और वास्तविक मनुष्य पैदा कर के देना।

सज्जनो ! आज हमें घोड़ों की नस्ल की उन्नति करने के लिये अश्व विशेषज्ञ (Horse-breeders) की आवश्यकता है, हम उन्हें तैयार करते हैं। गौओं की नस्ल और कुत्ते-बिल्लियों की नस्ल को उन्नत करने के लिये गो-विशेषज्ञ, कुत्ता-विशेषज्ञ (Cow-Breeders, Dog-

---

समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च।। ऋग्. १०.१५९। १-६।
इस सूक्त की व्याख्या हमारे ग्रंथ 'वेदोद्यान के चुने हुए फूल' के पृष्ठ १५९-१६१ पर देखिये।

breeders) और बिल्ली-विशेषज्ञों (Cat-Breeders) की आवश्यकता है, और हम उन्हें तैयार करते हैं। किन्तु आज हम मनुष्यों की नस्ल को उन्नत करने के लिये मानव-विशेषज्ञों (Man-Breeders) की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते हैं। वेद कहता है, देवियो ! तुम मनुष्यों की नस्ल को उन्नत करने वाले मानव-विशेषज्ञों (Man-Breeders) का काम करो। मनुष्य-समाज को सच्चे मनुष्य तैयार कर के देना मनुष्य-समाज की सब से भारी सेवा और सब से पवित्र कार्य है।

आप वेदों को पढ़ जाइये। वहाँ विवाह का एकमात्र उद्देश्य लम्पटता से बच कर सन्तान उत्पन्न करना बताया गया है। स्थान-स्थान पर स्त्री के लिये प्रजावती, पुत्रवती, प्रजाकामा, वीरसूः आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है। पचासों जगह उस से उत्तम सन्तान देने की प्रार्थनायें की गई हैं। वेद विवाह का प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति बताते हुए स्त्रियों से इस प्रयोजन को विशेष रूप से पूरा करने का आग्रह क्यों करते हैं यदि यह जानना हो तो हमें ऋग्वेद के १० वें मण्डल का ४७वां सूक्त उठा कर देखना चाहिये। उस सूक्त में सन्तान के अभिलाषी परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! हमें अमुक-अमुक गुणों वाली सन्तान दीजिये। आप के विनोद के लिये उस सूक्त का सारांश यहाँ दिया जाता है—"हे परमात्मन् ! हम आप से एक धन मांगते हैं। वह धन है, सर्वगुण सम्पन्न सन्तान। आप तो सभी धन देने वाले हैं हम ने आपका दाहिना हाथ पकड़ लिया है। आप हमें गोपति, आयुधारी, रक्षा देने वाले, सन्मार्ग पर ले चलने वाले, क्रियाशील, भारी-भारी आपत्तियों से बचाने वाले, वेदज्ञ, देवों के गुण वाले, लम्बे-चौड़े सुडौल शरीर वाले, गम्भीर, ऋषियों की आज्ञा सुनने वाले, उग्र दुश्मनों का पराभव करने वाले, बल और अन्न के रक्षक, वीर, पार लगाने वाले, धनदाता, सुदक्ष, दस्युहन्ता, शत्रुओं के नगरों का भेदन करने वाले, सत्यशील, घोड़ों वाले, रथों वाले, वीरों वाले, सैकड़ों और हजारों शक्तियों वाले, बलिष्ठ, सदाचारी लोगों से घिरा रहने वाले, सुख में रहने वाले और सुख देने वाले पूर्णशक्ति से युक्त सातों इन्द्रियों वाले, ऋत को धारण करने वाले, सुमेधा, बृहस्पति अर्थात् बड़े-बड़ों के रक्षक या ज्ञानी, औरों को बुद्धि देने वाले, लोगों को सब से बढ़ कर आश्रय और सहायता दे सकने वाले, पुत्र-रूप धन को हमें दीजिये। हम आपकी हृदय से प्रार्थना करते हैं[1]।" सूक्त द्वारा प्रार्थना करने वाला मानो गुणवाली गिनाते-गिनाते थक जाता है पर उस का सन्तोष नहीं

---

१. **जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम।**
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।

होता। आखिर वह दो विशेषण प्रयुक्त करता है—'चित्रं वृषणम्'—अद्भुत और वर्षा करने वाला। इस 'चित्र' या अद्भुत में वे सारे गुण आ जाते हैं जो कि यहाँ गिनाये जा सके, और 'वृषण' या वर्षा करने वाला विशेषण सन्तान में अभिलषित सारी परोपकार-भावनाओं की सूचना दे देता है। सूक्त के शब्दों में जो रस, सुन्दरता और भाव हैं उन्हें हम अपने शब्दों में नहीं ला सके हैं। जब इतनी ऊंची सन्तान प्राप्त करना हमारा ध्येय हो तो उस के लिये हमें विशेष यत्नशील होना पड़ेगा। मनुष्य-समाज को मनुष्यों का समाज रखने के लिये हमें उत्कृष्ट सन्तान की कितनी आवश्यकता है यह आसानी से समझा जा सकता है। उत्कृष्ट सन्तानें मनुष्य-समाज को देवियाँ ही दे सकती हैं। यह कार्य पुरुषों से साध्य नहीं है। इसी लिये वेद में स्त्रियों के उत्कृष्ट सन्तान पैदा करने के कर्तव्य पर सब से अधिक बल दिया गया है।

यहाँ यह न समझ लेना चाहिये कि स्त्रियों से उत्तम मनुष्य घड़-घड़ कर समाज को देने की प्रार्थना विशेष रूप से कर के वेद उन्हें सब प्रकार की शिक्षायें और विद्या-विज्ञान जानने से वंचित करना चाहता है। शिक्षा के क्षेत्र में वेद स्त्रियों की जो स्थिति रखता है वह हम ने ऊपर संक्षेप से अच्छी तरह दिखा दी है। यहां तक वेद स्त्रियों की शिक्षा पर बल देता है कि

स्वायुध स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं घरुणं रयिणाम्।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।
सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृष्णं रयिं दाः।।
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृष्णं रयिं दाः।।
प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।
वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः।
हृदिस्पृषो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।
यत् त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम्।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।

ऋग्. १०.४७।१-८।

इस सूक्त की विस्तृत व्याख्या हमारे ग्रन्थ 'वेदोद्यान के चुने हुए फूल' के पृष्ठ १५६-१५६ पर देखिये।

विवाह के अवसर पर वेद कन्या के माता-पिता से दहेज में भी ऊंचे प्रकार की शिक्षा ही देने को कहते हैं वस्तुतः देखा जाये तो सन्तानोत्पत्ति के मार्ग पर चलने वाली देवी को उच्च शिक्षा की भारी आवश्यकता है। एक घड़ा बनाने वाले कुम्हार को घड़ा बनाने के लिये पहले घड़े और मिट्टी के सम्बन्ध में कितना ज्ञान अपेक्षित होता है यह हर एक जानता है। जो देवी मनुष्य बनाने का काम अपने ऊपर लेना चाहती है उसे मनुष्य-स्वभाव (Human Nature) के विस्तृत ज्ञान की जो आवश्यकता है इसे आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। किस समय मनुष्य-समाज को कैसे मनुष्यों की आवश्यकता है यह समझ सकना और उस के अनुसार उपयुक्त मनुष्य पैदा करके समाज को देना पूर्ण शिक्षित माताओं से ही बन सकता है। पूर्ण शिक्षित मातायें ही यह जान सकेंगी कि समय की आवश्यकताओं के अनुसार विशेष प्रकार के मनुष्य पैदा करने के लिये सन्तानों को किन परिस्थितियों में रखना चाहिये, उन पर कैसे संस्कार किस तरह डालने चाहिये। इसी लिये वेद स्त्रियों की शिक्षा पर पूरा बल देता है और उन से अपनी शक्तियों और योग्यता को मनुष्य-समाज के कल्याण और संसार की उन्नति के लिये उत्कृष्ट सन्तानें पैदा करने में लगाने की मानो प्रार्थना करता है। स्त्रियें अपनी सारी योग्यता उत्तम सन्तानें तैयार करने में लगा दें। क्योंकि यह कार्य वे ही कर सकती हैं। पुरुष से यह कार्य बन नहीं सकता। और पुरुष सब प्रकार की सांसारिक चिन्ताओं से स्त्रियों को मुक्त करने का भार अपने ऊपर ले लें। किन्तु यह कभी न भूलना चाहिये कि जो देवियें सन्तानोत्पत्ति के मार्ग में न पड़ना चाहें—विवाहित जीवन में प्रवेश न करना चाहें—उन्हें पूरा अधिकार है कि वे पुरुषों की तरह जो कुछ बनना चाहें बने, जिस तरह समाज की सेवा करना चाहें करें। विवाहित स्त्री भी यदि सन्तान के प्रति अपने कर्तव्यों में किसी तरह की कमी न आने देते हुए समाज-सेवा का कार्य करना चाहे तो खुशी से कर सकती है।

सज्जनो ! आपकी सेवा में वैदिक धर्म में स्त्रियों की जो स्थिति है उसे दिखाने के लिये ये कुछ पंक्तियें उपस्थित की गई हैं। इस सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ कहा जा सकता है। पर समय और स्थान इस की आज्ञा नहीं देते। जो कुछ आपने सुना है, मैं समझता हूँ, उस से आप भली-भाँति जान गये होंगे कि वैदिक धर्म में स्त्रियों की स्थिति कितनी स्वतन्त्र, कितनी सन्मान-जानक और कितनी गौरवमय है।

आर्यसमाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है–अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।